जैन धर्म में व्रत

• डॉ. ए.बी. शिवाजी

विश्व में ऐसा कोई धर्म नहीं है जिस ने व्रत की आवश्यकता और उसके महत्व को प्रतिपादित नहीं किया हो। इस लेख में हम अपने आप को "जैन धर्म में व्रत" तक ही सीमित रखेंगे क्योंकि जिस सूक्ष्मता से जैन में धर्म व्रतों का अन्वेषण किया गया और विस्तारित किया गया वैसा अन्य धर्मों के विद्वान नहीं कर सके हैं। जैन धर्म में व्रतों के इतिहास पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि "आरम्भ में व्रतों' की संख्या बहुत थोड़ी थी। आदि पुराण में केवल दशलक्षण, रत्नत्रय, षोडश कारण, और अष्टान्हिका व्रतों का ही उल्लेख मिलता है। अधिकांश व्रतों की कल्पना और रचना भट्टारकों द्वारा चौदहवीं और सोलहवीं शताब्दी के बीच हुई जो काम्यव्रतों की श्रेणी में आते हैं।'[१]

जैनागम में व्रत की परिभाषा निम्न रूप से बताई गई है -

संकल्प पूर्वकः सेव्यो नियमोऽशुभ कर्मशाः।
निवृतिवी व्रतं स्याद्वा प्रवृति शुभ कर्मशि॥

अर्थात् सेवन करने योग्य विषयों में संकल्प पूर्व नियम करना अथवा हिंसादि अशुभ कर्मों से संकल्प पूर्वक विरक्त होना अथवा पात्रदानादिक शुभ कर्मों में संकल्प पूर्वक प्रवृत्ति करना व्रत है। देवेन्द्र मुनि शास्त्री के अनुसार व्रत का अर्थ, किसी कार्य को करने या न करने का मानसिक निर्णय बतलाते हैं। जिसे व्यवहार में संकल्प कहा जा सकता है किन्तु वे संकल्प और व्रत में अन्तर करते हैं। वे लिखते हैं -"संकल्प मानसिक निर्णय ही है और निर्णय शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार के हो सकते हैं, पर व्रत सदा शुभ ही होता है। वह जीवन को नियंत्रित करने वाली स्वेच्छा से स्वीकृत मर्यादा है। समाज, राष्ट्र और परिवार की सुव्यवस्था, सुरक्षा और सुख शांति के लिए व्रत ग्रहण करना आवश्यक है। व्रत एक प्रकार का आत्मानुशासन है जो शरीर, इन्द्रिय और मन को अपने अनुशासन में रखता है।" [२]

व्रत और विवेक में गहरा सम्बन्ध है क्योंकि व्रति केवल व्रत ही नहीं लेता, पहिले वह विवेक को जगाता है, श्रद्धा और संकल्प को दृढ़ करता है, कठिनाइयाँ झेलने की क्षमता पैदा करता है। प्रवाह के प्रति कूल चलने का साहस लाता है फिर वह व्रत लेता है।" [३]

जैन धर्म में प्रचलित व्रत - महावीर ने जीवन व्रत साधना का प्रारुप प्रस्तुत किया था। इसी कारण साधना जीवन को दो वर्गों में बांटते हुए उन्होंने बारह व्रत बतलाये। इन बारह व्रतों की तीन श्रेणियाँ

---

१. महावीर जयन्ती स्मारिका, १९७२

२. जैन आचार सिद्धान्त और स्वरूप, देवेन्द्र मुनि शास्त्री पृ. १९३।

३. प्रवचन डायरी १९५६-५७, आचार्य तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं जो श्रावक वर्ग के लिए है। ये व्रत, पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और शिक्षाव्रत हैं। वैसे पंच महाव्रतों का गुणगान जैन धर्म के सिद्धान्तों के रूप में प्रसिद्ध है, जिस में (१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य और (५) अपरिग्रह गिनाये जाते हैं। ये पांचों व्रत श्रावक और श्रमण दोनों के लिए हैं, अन्तर केवल इतना ही है कि श्रमण जीवन में उनका पालन पूर्ण रूप से करता है और गृहस्थ उनका पालन आंशिक रूप से करता है। [४]

अणुव्रत के अन्तर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह का ही समावेश है किन्तु श्रावक अपनी-अपनी क्षमता एवं स्थिति के अनुसार उसका पालन करते हैं।

गुणव्रत के अन्तर्गत दिशाव्रत, उपभोग, परिभोग परिमाण व्रत एवं अनर्थदण्ड का समावेश किया गया है।

शिक्षाव्रत के अन्तर्गत सामायिक, दैशावकाशिक, पौषधोपवास एवं अतिथि संविभाग भेद किये गये हैं।

अहिंसा व्रत - अहिंसा का पूरा आचरण महाव्रत कहलाता है और आंशिक रूप से पालन करना अणुव्रत कहा जाता है। प्रश्न व्याकरण वृति के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जहाँ अहिंसा के नामों का उल्लेख किया गया है वहाँ दया, दान, सेवा अभय आदि का उल्लेख भी अहिंसा के अन्तर्गत ही है। दशवैकालिक १/१ का उदाहरण देते हुए बलदेव उपाध्याय अपनी पुस्तक 'भारतीय दर्शन' में लिखिते हैं "इस प्रकार मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी को क्षति न पहुंचाना सब पर समान भाव से दया करना, अभय दान देना, प्राणिमात्र की सेवा करना अहिंसा के रूप हैं।"[५] अहिंसा व्रत के रूप में "श्रमण को ", डॉ. सागरमल जैन का कथन है, "सर्वप्रथम स्व और पर की हिंसा से विरत होना है' काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दूषित मनोवृत्तियों के द्वारा आत्मा के स्वगुणों का विनाश करना स्व हिंसा है। दूसरे प्राणियों को पीड़ा एवं हानि पहुंचाना पर हिंसा है। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है कि भिक्षु जगत में जितने भी प्राणी हैं उनकी हिंसा जानकर अथवा अनजान में न करें, न करावें और न हिंसा करने वाले का अनुमोदन ही करें।" [६] किन्तु एक सांसारिक व्यक्ति अथवा गृहस्थ के लिए जीवन निर्वाह हेतु हिंसा से बचना असम्भव है इस कारण गृहस्थ के लिए पाँच अहिंसा अणुव्रत बताये गये हैं -

(क) आरम्भिक हिंसा - भोजन बनाने, आग जलाने, गमन करने आदि आरम्भिक कार्यों में बहुत से छोटे-छोटे जीवों की हिंसा हो जाती है जिस से सर्वथा बचना गृहस्थ के लिए असम्भव है।

(ख) औद्योगिक हिंसा - कृषि आदि व्यवसायों में बहुत से छोटे-छोटे जीवों की रक्षा करना असम्भव है। अतः ऐसी हिंसा यदि होती है तो गृहस्थ के लिए क्षम्य है।

(ग) विरोधी हिंसा - मनुष्य को अपनी, अपने परिवार के सदस्यों, समाज व राष्ट्र की रक्षा डाकू, लुटेरे, असामाजिक प्राणियों से करनी पड़ती है। ऐसी दशा में मनुष्य को अपनी आत्म शक्ति के

---

४. जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. सागरमल जैन, पृ. ३३१

५. भारतीय दर्शन- बलदेव उपाध्याय पृ. ६५-६६।

६. दशवैकालिक सूत्र ६/१०; जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. सागरमल जैन, पृ. ३३२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा अपनी एवं आश्रितों की रक्षा प्राण देकर भी करना अनुचित नहीं है। वह अहिंसा अणुव्रत का पालन ही कहलायेगा क्योंकि उस की भावना हिंसा करने की नहीं है। भय से भागना भी उचित नहीं है। हिंसा आदि अशुभ भावना से अशुभ कर्मों का बंधन होता है। भावना रहित, शुद्ध, वीतराग अवस्था में किसी कर्म का बन्धन नहीं होता है।

(घ) संकल्पी हिंसा - मनुष्य जब विचार, संकल्प द्वारा या प्रमाद वश किसी प्राणी का जीवन नष्ट करता है, अथवा स्वाद या शौक के लिए किसी पशु को मार कर भोजन के रूप में ग्रहण करता है अथवा जो वस्तु पशु पक्षी के मारे जाने से बनती है, उसे संकल्पी हिंसा के अन्तर्गत रखा जाता है।[७] जहाँ तक हो सके मनुष्य को संकल्पी हिंसा से भी बचना चाहिये।

सत्यव्रत - महावीर स्वामी नें सत्य को भगवान के रूप में माना है (तं सच्चं खु भगवं) जैन धर्म एवं दर्शन के अनुसार पारसनाथ द्विवेदी अपनी पुस्तक भारतीय दर्शन में सत्य की व्याख्या निम्न रूप से करते हैं -

"सत्य का अर्थ है असत्य (मिथ्या) का सर्वथा परित्याग अर्थात् मन, वचन और शरीर से मिथ्या आचरण का सर्वथा परित्याग करना 'सत्य' है। सत्य वह महाव्रत है जिससे हमारे जीवन में एक माधुर्य उत्पन्न होता है, नवीन स्फूर्ति एवं प्रेरणा उत्पन्न होती है, एक नया प्रकाश मिलता है। सत्य के विविध रूप हैं। क्षमा, निराभिमानता, विनम्रता, उदारता, सेवा आदि सभी सत्य के रूप हैं। राग-द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह आदि के वश में होकर कभी मिथ्या आचरण कर बैठता है, अतः उनका सर्वथा परित्याग करना चाहिए। इस प्रकार मनसा, वाचा, कर्मणा सब प्रकार से मिथ्या आचरण का परित्याग करना 'सत्य' है।[८]

चाहिये रतन लाल जैन सत्य का विश्लेषण निम्न रूप से करते हैं -"अपने आर्थिक आदि लाभ के लिए दूसरों को धोखा देना या इस प्रकार कहना, संकेत करना या चुप रहना जिससे दूसरे मनुष्यों को भ्रम हो जाय या वे अन्यथा प्रकार समझ जायं असत्य आचरण है। यदि सत्य कह देने से कोई बड़ा अनर्थ होता है तो ऐसा सत्य भाषण भी उचित नहीं है। यदि किसी सत्य बात के कह देने से, किसी के घर कलह तथा आपस में मार-पीट होने की आशंका हो तो ऐसी बात को कहना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार यदि कोई चोर, डाकू या अन्य व्यक्ति किसी के धन-अपहरण करने हेतु, उस व्यक्ति के घर का भेद लेना चाहे और अपने दुष्य अभिप्राय को छिपाकर मीठी-मीठी बात बनाये, तो ऐसी अवस्था में उससे सत्य कहना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता। ऐसे अवसरों पर मौन धारण करना ही उपयुक्त है। दूसरे मनुष्यों के गौरव कम करने या अपयश फैलाने के हेतु उनके गुप्त दोषों को प्रगट करना या अन्य प्रकार की बुराई करना अनुचित है। सत्य व्रती के लिए उचित है कि वह सदा सत्य की खोज करे, प्रत्येक बात पर निष्पक्ष बुद्धि से विचार एवं मनन करे, सत्य के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए तत्पर रहे, जो सत्य प्रतीत हो उस को अंगीकार करे, जो विचार धारणायें असत्य मालूम हो, उनको त्याग दे।"९

---

७. आत्म रहस्य- रतनलाल जैन पृ. १४९।

८. भारतीय दर्शन, पारसनाथ द्विवेदी, पृ. ६५-६६।

९. आत्मा रहस्य- रतनलाल जैन, पृ. १५०-१५१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिए दू आचारांग सूत्र १/३/२, १/३/३ में स्पष्ट कहा गया है कि सत्य में मन की स्थितरता करो, जो सत्य का वरण करता है वह बुद्धिमान पाप कर्मों का क्षय कर देता है। सत्य की आज्ञा में विचरण करने वाला साधन इस संसार से पार हो जाता है।

सत्य महाव्रत के अन्तर्गत पाँच भावनाओं का विधान है जिनका पालन करना चाहिए -(१) विचार पूर्वक बोलना चाहिए, (२) क्रोध का त्याग करके बोलना चाहिए, (३) लोभ का त्याग करके बोलना चाहिए, (४) भय का त्याग करके बोलना चाहिए, और (५) हास्य का त्याग करके बोलना चाहिए।[१०]

अस्तेयव्रत - स्वार्थ वश अन्य व्यक्तियों के धन आदि पदार्थों का बिना अनुमति के ले लेना स्तेय अथवा चौर्य के अन्तर्गत माना जाता है। इसका सर्वथा परित्याग करना अस्तेय कहलाता है। चौर्य को एक प्रकार की हिंसा ही मानी गई है। प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा गया है कि आदत्तादान (चोरी) संताप, मरण एवं भय रूपी पातकों का जनक है। दूसरे के धन के प्रति लोभ उत्पन्न करता है। चोरी करना अपयश का कारण होता है। आत्म रहस्य पुस्तक में लिखा गया है, "यदि कोई सम्पत्ति या वस्तु सुपुर्द की जाएं उस वस्तु को हड़प कर लेना या थोड़ा देना भी चोरी में सम्मिलित है। चोरी किये हुए भूषण आदि वस्तुओं को थोड़े से मूल्य में ले लेना भी चोरी ही है। दूसरे मनुष्यों को चोरी करने की प्रेरणा करना, उत्तेजना देना, चोरी डाके आदि कार्यों की प्रशंसा करना सर्वथा अनुचित है। दूसरे व्यक्ति की वस्तुओं को दबाव डालकर, धोखा देकर या बहलाकर ले लेना भी इस अचौर्यव्रत के विरुद्ध है। किसी अन्य व्यक्ति की अज्ञानता, दुर्व्यवस्था या मूर्खता से लाभ उठाकर उस की बहुमूल्य वस्तु को कम मूल्य देकर ले लेनें से भी इस व्रत में दूषण आता है। अनुचित लाभ उठाने के लिए चुंगी से बचने के हेतु छिपाकर वस्तु को नगर में लाना, चुंगी के अफसरों को बनावटी बीजक दिखाकर कम चुंगी देना, बनावटी बही खाता दिखलाकर इनकम टैक्स अधिकारी से कम नियत इनकमटैक्स नियत कराना रेल में बिना टिकिट चलना या नीचे श्रेणी का टिकट लेकर ऊंची श्रेणी के डिब्बे में बैठ कर जाना, बढ़िया श्रेणी की वस्तु में घटिया श्रेणी की वस्तु मिला देना, छोटे गज से नाप देना, तोल में कम दे देना आदि बातें चौर्य कर्म में सम्मिलित है।"[११]

जैन धर्म-दर्शन में स्तेय को चार भागों में विभाजित किया गया है (१) द्रव्य क्षेत्र (३) काल (४) भाव। द्रव्य में सजीव निर्जिव वस्तुओं को रखा गया है। क्षेत्र में गृह, भूमि, खेती आदि को गिनाया जाता है। काल में वेतन, ऋण आदि में कमी-बेशी करने की बातों को लिया जाता है और भाव में किसी लेखक की रचना, चाहें वह कविता, लेख अथवा निबन्ध हो, चुराने को लिया जाता है। इस कारण स्तेयव्रत का प्रावधान समाज एवं व्यक्ति दोनों के लिए लाभप्रद है।

ब्रह्मचर्यव्रत - जीवन में ब्रह्मचर्य का बहुत अधिक महत्व है। पाँचों महाव्रतों में ब्रह्मचर्य जीवन में एक विशेष स्थान रखता है। ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्मचर्य व्रत भंग हो जाने पर सभी व्रत तत्काल भंग हो जाते हैं। प्रश्न व्याकरण सूत्र में बताया गया है कि ब्रह्मचर्य व्रत के भंग होने से सभी व्रत नियम, शील, तप, गुण आदि दही के समान मथित हो जाते हैं, चूर-चूर हो जाते हैं, उनका विनाश हो जाता है।[१२] प्रश्न व्याकरण सूत्र के आधार पर ही डॉ. सागरमल जैन लिखते हैं -"ब्रह्मचर्य उत्तम तप नियम, ज्ञान,

---

१०. जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन - डॉ. सागरमल जैन, पृ. ३३४।

११. आत्म रहस्य- रतनलाल जैन, पृ. १५१-१५२।

१२. प्रश्न व्याकरण सूत्र, ९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दर्शन, चारित्र, सम्यकत्व तथा विनय का मूल है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से मनुष्य का अन्तःकरण, प्रशस्त गम्भीर और स्थिर हो जाता है।" [१३] अतः मन, वचन और कर्म से समस्त इंद्रियों पर संयम करना एवं सभी प्रकार की वासनाओं एवं कामनाओं का परित्याग करना ब्रह्मचर्य विधान के अन्तर्गत देखा जाता है, ब्रह्मचर्य व्रत के पालन का सबसे सुन्दर विश्लेषण रतनलाल जैन ने किया है जो निम्न प्रकार से है -

"सब से उत्तम बात यह है कि मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचारी रहे, किसी स्त्री के साथ काम सेवन न करें, न काम वासना को हृदय में स्थान दे, अपने मन पर नियन्त्रण रखें, पूर्व ब्रह्मचारी होना साधारण गृहस्थ के लिए कठिन है, इसलिए गृहस्थ के लिए उचित है कि वह अपनी काम वासना को अपनी विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री से चाहे वह विवाहित हो या अविवाहिता, गृहस्थिन हो या वेश्या, काम सेवन न करें। स्त्री या लड़कों के साथ अनंग-क्रीड़ा करना व्यभिचार से भी अधिक निन्द्य एवं दूषित है। पर स्त्री के साथ अश्लील हास्य करना, मनोरम अंग देखना, रमने की वासना हृदय में लाना, आसक्त होना आदि ब्रहमचर्य व्रत के विरुद्ध है। अपनी विवाहिता स्त्री के भोग विलास में रत रहना भी कभी उचित नहीं कहा जा सकता है। इसलिए मुमुक्षु जीव का कर्तव्य है कि काम वासना को वश में करें। जहाँ तक संभव हो सके, उतना कम अपनी धर्म पत्नी के साथ संभोग करें। श्रेष्ठ तो यह है कि केवल संतान उत्पत्ति के हेतु, मासिक धर्म के पश्चात् अपनी धर्म पत्नी के साथ संभोग करें। ब्रह्मचर्य व्रती के लिए उपयुक्त है कि वह अपनी आत्मिक शक्ति एवं परिस्थिति पर भली भांति विचार करके , अपने जीवन पर्यन्त या किंचित काल के लिए, अपनी स्त्री के साथ भी भोग करने के नियम बना ले। इन नियमों से उसको ब्रह्मचर्य व्रत पालने में बड़ी सहायता मिलेगी।" [१४]

अपरिग्रह व्रत - जैन धर्म में विश्वास किया जाता है कि अहिंसा की आधार शिला अपरिग्रह है। अपरिग्रह की साधना के बिना अहिंसा टिक नहीं सकती। [१५] हमें यहाँ एक बात का स्मरण रखना चाहिए कि बात वस्तुओं को छोड़ने की नहीं है किन्तु वस्तुओं से अलिप्त रहने की है। दशवैकालिक ६/२१ में माना गया है कि आन्तरिक मूच्छि भाव या आसक्ति ही परिग्रह है। तत्वार्थसूत्र में भी यही कहा गया है। अतः अपरिग्रहव्रत लेना व्यक्ति एवं समजा दोनों के लिए लाभप्रद है। विश्व में वर्ग भेद, विषमता, शोषण एवं संघर्ष-परिग्रह के कारण ही उत्पन्न होते हैं। अतः परिग्रह कर्मों के बन्धन का कारण बनता है।

अपरिग्रह के दो पक्ष हैं : आत्मगत और समाजगत।

अपरिग्रह व्रती इस व्रत से आत्म साधना की ओर तो बढ़ता ही है, साथ-साथ समाज का उपकार भी करता है। अपने आप की शुद्धि तथा उपलब्ध आय का वह सीमाधिकरण एवं विसर्जन करता है और इस प्रकार वह लोक और परलोक कर्तव्यों में अपनी भागीदारी का वहन ईमानदारी से करता है।

डॉ. सागरमल जैन लिखते हैं -"जैन आगमों में परिग्रह दो प्रकार का माना गया है, (१) बाह्य परिग्रह और (२) आम्यन्तरिक परिग्रह। बाह्य परिग्रह में इन वस्तुओं का समावेश होता है -(१) क्षेत्र (खुली भूमि), (२) वस्तु (भवन), (३) हिरण्य (रजत), (४) स्वर्ण, (५) धन (सम्पत्ति), (६) धान्य, (७) द्विपद

१३. जैन, बौद्ध तथा गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. सागरमल जैन, पृ. ३३६।

१४. आत्म रहस्य- रतनलाल जैन, पृ. १५२।

१५. तीर्थंकर- श्री विद्यानन्द विशेषांक, पृ. १३३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(दास-दासी), (८) चतुष्पद (पशु आदि) और (९) कुप्य (घरगृहस्थी का सामान)। जैन श्रमण उक्त सब परिग्रहों का परित्याग करता है। इतना ही नहीं उसे चौदह प्रकार के आभ्यन्तरिक परिग्रह का भी त्याग करना होता है जैसे १. मिथ्यात्व, २. हास्य, ३. रति, ४. अरति, ५. भय, ६. शोक, ७. जुगुप्सा, ८. स्त्रीवेद, ९. पुरुषवेद, १०. नपुसंकवेद, ११. क्रोध, १२. मान, १३. माया और १४. लोभ"

उपर्युक्त रूप से हमने देखा कि किस प्रकार श्रमण एवं श्रावक के लिए व्रतों का निर्धारण किया गया है। हमने गुणव्रत और शिक्षाव्रत का भी उल्लेख किया था जिन का पालन किया जाना चाहिए।

इस लेख के द्वारा मेरा निवेदन जैन धर्म के समस्त अनुयायियों से, चाहे वे श्रमण हो अथवा श्रावक, है कि वर्तमान में विश्व में व्याप्त विषमताओं से बचने एवं बचाने का एक ही साधन है और वह है व्रत। अतः इसका प्रचार एवं प्रसार करने की और साथ ही साथ जीवन में उतारने की आवश्यकता है जो जैन समाज में दृष्टिगोचर नहीं होती है। क्या मैं मसीही धर्म का अनुयायी होते हुए आशा करूं कि जैन धर्म के अनुयायी एवं उपदेशक अन्य धर्मों के सम्मुख व्रतों का पालन का उदाहरण पेश करेंगे या ये बातें केवल धार्मिक ग्रंथों तक ही सीमित रहेगी या केवल जीव्हा के आभूषण बनेगें?

आराधना
२७ रवीन्द्र नगर, उज्जैन

अपने लिए तो सभी जिते हैं पर दूसरों के लिए जीता हैं वही महान हैं। आत्मीयता की इस भावना के विकास का भी एक क्रम होता हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो सिर्फ अपने लिए ही स्वार्थ तथा अपने ही शारीरिक सुख का ध्यान रखते हैं। कुछ ऐसे होते हैं जो अपने परिवार व सगे-सम्बन्धियों की हित चिंता में लीन रहते हैं। उनसे जो उच्च होते हैं वे अपने देश की कमाई व सुखः समृद्धि का प्रयत्न करते हैं किन्तु जिनका हृदय उनसे भी अधिक निशाए होता हैं, वे विश्व के प्रत्येक प्राणी के सुख को अपना सुख तथा दुःख को अपना दुःख समझते हैं।

• *युवाचार्य श्री मधुकर मुनि*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org